P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-2* ISSUE-9* December- 2017
E: ISSN NO.: 2455-0817 *Remarking An Analisation*

भारत में लोकतंत्रः एक विवेचनात्मक अध्ययन

मिथलेश कुमारी
व्याख्याता
राजनीति विज्ञान विभाग,
जे.डी.एम. महाविद्यालय, गुढ़ा कटला,
दौसा ,राजस्थान

सारांश

जागरूक मतदाता ही लोकतंत्र का रक्षक होता है वह यदि चेत जाये तो भारत में संसदीय संस्थाओं का सम्मान लौट सकता है। राजनीति को भ्रष्टाचार और अपराधीकरण से मुक्ति मिलेगी तो लोकतंत्र मजबूत होगा। क्षेत्रीय और जातिगत समीकरणों के नजरिए से राजनीतिक दलों ने बाहुबलियों को भी अपना उम्मीदवार बनाने में संकोच नहीं किया है। इसलिए मतदाता को मतदान करते समय राजनीतिक दल के बजाय अपने प्रतिनिधि उम्मीदवार के चरित्र पर खास ध्यान देना होगा। जनता को आंखें खोलनी होंगी। उसे अपने प्रत्याशियों के चाल चलन और चरित्र को देखकर ही फैसला करना होगा, तभी भारतीय लोकतंत्र ओर मजबूत होगा और बहुमत की सरकारें बनेंगी।

मुख्य शब्द : लोकतंत्र, मतदाता, राजनीतिक दल।

प्रस्तावना

लोकतंत्र को ''जनता द्वारा जनता का शासन'' या ''जनप्रतिनिधि द्वारा राष्ट्र का शासन'' कहा गया है। कहने में ये बहुत आकर्षक बातें है, जिनसे जनमन में उत्साह का संचार होता है पर आज तक जनता कहीं भी अपने को शासित नहीं कर सकी और न यह संभव है। सरकारों का संचालन सदा थोड़े से विशिष्ट अभिजात कुलों के हाथ में रहा है जिसका साफ मतलब है कि बहुतों पर थोड़ों का शासन यानी कुलीनतंत्रात्मक शासन व्यवस्था। संसदीय लोकतंत्र में जनता से लिए गये विशिष्ट व्यक्तियों का चयन राजनीतिक दल करते है, जिन्हें चुनाव में जनता अपना मत देकर संसद या विधानसभाओं के लिए चुनती है। कहीं–कहीं कुछ निर्दलीय उम्मीदवार भी जीत जाते है, पर अधिसंख्य उम्मीदवार राजनीतिक दलों के ही विजयी होते है और राजनीतिक दलों या उनके गठबंधन की ही सरकार बनती हैं।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोधपत्र निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति को ध्यान में रखकर तैयार किया गया है–

1. भारत में मतदान व्यवहार का अध्ययन करना।
2. भारतीय लोकतंत्र की समस्याओं का अध्ययन करना।
3. भारत में चुनावी व्यवस्था की कमियों को उजागर करना तथा उनके समाधानों की व्यवस्था का अध्ययन करना।
4. जनता में राजनीतिक जागरूकता पैदा करना, ताकि जनता लोकतंत्र में अपनी सक्रिय भागीदारी निभा सकें।
5. भारतीय राजनीति में जाति, धर्म, वर्ग की भुमिका का अध्ययन करना।

साहित्यावलोकन

नॉर्मन डी पामर ने अपनी कृति 'द इंडियन पॉलिटिकल सिस्टम' (1963) में भारतीय राजनीतिक व्यवस्था का विस्तृत वर्णन करते हुए, यह बताया हैं कि कैसे आजादी के बाद भारत में लोकतंत्र स्थापित हुआ हैं और लोकतंत्र सफलता की ओर अग्रसर है।

पीऊ घोष ने अपनी पुस्तक 'इण्डियन गवर्नमेंट एंड पॉलिटिक्स' (2017), में समकाली काल में भारतीय शासन एवं राजनीति का अध्ययन करते हुए भरतीय राजनीति में उभर रहीं नई प्रवृतियों का अध्ययन प्रस्तुत किया हैं।

मोरिस जॉन्स ने अपनी रचना 'गवर्नमेन्ट एण्ड पॉलिटिक्स ऑफ इंण्डिया' (1966) में भारतीय शासन एवं राजनीति का विस्तृत वर्णन करते हुए भारत में शासन की बारीकियों का वर्णन किया है साथ ही भारतीय राजनीति के उभरते नये आयामों पर प्रकाष डाला हैं।

ए.एस.नारंग द्वारा लिखित कृति 'भारतीय शासन एवं राजनीति' (2010) में भारतीय संविधान, शासन, राजनीतिक संस्थाएं, राजनीतिक प्रक्रियाओं तथा विकसित हो रहीं प्रवृतियों का वर्णन तथा विश्लेषण सामाजिक आर्थिक विकास तथा परिवर्तन के संदर्भ में किया गया हैं।

रजनी कोठारी द्वारा लिखित पुस्तक 'कास्ट इन इण्डियन पॉलिटिक्स' (1970) में भारतीय राजनीति एवं चुनाव में जाति की भूमिका का अध्ययन करते हुए यह बताया हैं कि अब भारत में जाति का राजनीतिकरण हो गया है।

शोध सीमा

शोध कार्य करते समय शोधार्थी के लिए यह ध्यान रखना जरूरी होता है कि शोध कार्य नियत एवं सम्यक समय पर पूर्णता प्राप्त कर सकें। क्योंकि प्रत्येक शोध कार्य को पूरा करने का समय निश्चित होता है। इसी प्रकार विषय की सीमा भी निश्चित होती है। इसलिए प्रस्तुत शोध कार्य में शोध सीमा को ध्यान में रखते हुए भारत में लोकतंत्र एवं राजनीतिक दलों के साथ–साथ चुनावों का संक्षिप्त अध्ययन किया गया है।

शोध पद्धति

किसी भी शोध कार्य के लिए उपयुक्त शोध विधि का चयन करना अत्यन्त आवश्यक होता हैं क्योंकि उपयुक्त शोध विधि का चयन करके ही शोधार्थी अपने शोध को यथेष्ठ परिणाम तक पहुँचा सकता है। प्रस्तुत शोध पत्र में चुकी मतदाताओं एवं राजनीतिक दलों, लोकतंत्र का अध्ययन करना हैं। इसलिए इसमें अवलोकन, साक्षात्कार, अनुसूची एवं प्रश्नावली के साथ–साथ सर्वेक्षण विधि का प्रयोग करके शोध के परिणाम प्राप्त किये गए हैं।

संसदीय लोकतंत्र का सबसे बड़ा मौलिक दोष है कि यह वैयक्तिक मतदान पर आधारित है। समाज का बिखरा स्वरूप ही इस प्रकार की राजनीतिक प्रणाली का जनक है। परन्तु इससे इस बात में कोई फर्क नहीं पड़ता कि यह प्रणाली मिथ्या धारणाओं पर अवलम्बित है– राज्य व्यक्तियों का योगात्मक स्वरूप नहीं हो सकता। जनता, राष्ट्र या समुदाय को वैयक्तिक मतदाताओं के समकक्ष नहीं रखा जा सकता है। संसदीय लोकतंत्र के समर्थकों का दावा है कि इस व्यवस्था के अन्तर्गत अगर सम्पूर्ण जनता की नहीं तो कम से कम बहुमत की प्रतिनिधि होने का दावा तो सरकार कर ही सकती है। परन्तु बहुत बार देखा जाता है कि व्यापक वयस्क मताधिकार के अन्तर्गत निर्वाचित सरकार अल्पमत की ही सरकार होती है, क्योंकि वह अल्पमत का ही प्रतिनिधित्व करती है बहुदलीय व्यवस्था होने पर तो ऐसा बहुत बार होता है। मसलन, भारत में पिछले महानिर्वाचन के बाद कई राज्यों में अल्पमत सरकारें कायम हुई ।

भारत में लोकतंत्र की समस्याएँ

विष्व के सबसे बड़े लोकतांत्रिक देश भारत में एक तिहाई मतदाता मतदान में हिस्सा नहीं लेते। चुनाव आयोग द्वारा 5 फरवरी, 2017 को आधिकारिक आंकडे जारी किये गये। आंकड़ों के मुताबिक, वर्ष 2014 के लोकसभा चुनाव में कुल 81.5 करोड़ आधिकारिक मतदाता थे, जिनमें से 55,3801,801 मतदाताओं ने अपने मत का प्रयोग किया। वही वर्ष 2009 में कुल 71.7 करोड आधिकारिक मतदाताओं में से 41,71,58,969 लोगों ने मतदान में हिस्सा लिया। इस तरह से वर्ष 2014 में लोकसभा चुनाव में कुल 66 तथा वर्ष 2009 के लोकसभा चुनाव में सिर्फ 58 फीसदी ही मत पड़े। आंकड़ों के मुताबिक, वर्ष 2009 की तुलना में वर्ष 2014 के लोकसभा चुनाव में मतदान प्रतिशत 8 फीसदी बढ़ा है। लेकिन अब भी लगभग 34 प्रतिशत मतदाता ऐसे है, जो मतदान नहीं करते। आंकड़ें यह भी दर्षाते है कि देश का ग्रामीण वर्ग, शहरी वर्ग की अपेक्षा मतदान में ज्यादा रूचि दिखाता है। गाँवों की तुलना में महानगरों में वोट प्रतिशत कम ही रहा है।

राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन के मुताबिक देश का मध्यम वर्ग चुनाव में सबसे अधिक मतदान करता है। भारत में अत्यधिक प्रतिस्पर्धी समाज है, जिसमें वेतनभोगी पेषेवर वर्ग के पास राजनीति के लिए जोखिम लेने की गुंजाइष दुर्लभ ही होती है। भारतीय मध्यम वर्ग के पास न तो आंदोलन आदि के लिए वक्त है और न पैसा या वोट है, जिनका राजनीति में महत्व होता है। इस तरह षिक्षित, पेषेवर वर्ग पूरी प्रक्रिया से नदारद है और आमतौर पर इस नफरत से देखता है। फिर भी समाज के इसी मध्यम वर्ग को शिदद्त से भारत की ज्वंलत जरूरतों का अहसास है जैसे ठोस व स्थिर सरकार की जरूरत। उनके मन में ऐसे भारत का विचार है, जो जाति व समुदाय की विभाजनकारी राजनीति से नहीं बल्कि आर्थिक तरक्की के विचार से संचालित हो। वे उनके करों से चलने वाली सार्वजनिक सेवाओं की गुणवत्ता में लगातार बढ़ोतरी चाहते है। हिंदुत्व और गोरक्षकों के शोर के विपरीत शिक्षा, स्वास्थ्य और शहरी विकास में निवेश उनकी प्राथमिकता है।

अनुभव से प्रतीत होता है और बहुत से प्रख्यात विचारकों ने भी यह बताया है कि भारी गठरी, ठगविद्या और संचार के उन्नत साधनों की मदद से बड़े–बड़े राजनीतिक दल आज जिस तरह अपने पक्ष में प्रचार करते है, उसे देखते हुए यही कहा जा सकता है कि निर्वाचन मतदाताओं का नहीं, बल्कि उन शक्तियों और हितों का प्रतिनिधित्व करते है, जो दलों को निष्क्रिय बनाकर अपना काम साधने के लिए तत्पर रहते है। लोकतंत्र में जनहित को कुचलने वालों की होड़ रहती है, वहां सर्वसत्तावा के अधीन कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं रहता ।

संसदीय लोकतंत्र का एक ओर बड़ा दोष जनता को उकसाने वाले भाषण है। मत प्राप्त करने के लिए मतदाताओं को फंसाने के लिए तरह–तरह के अर्धसत्य और कभी–कभी पूर्ण असत्य बातों का आश्रय लिया जाता है लोगों को उत्तेजित कर उनकी कुत्सित भावनाओं को जगाया जाता है। झूठे किन्तु मीठे वादे करके लोगों को फुसलाया जाता है। सार्वजनिक हित से सम्बद्ध किसी प्रश्न या नीति का सही रूप जनता के सामने प्रस्तुत नहीं किया जाता। इसके विपरीत तिकड़मी ढंग से अपने पक्ष के अनुकूल बातें तोड़–मरोड़ कर उपस्थित की जाती है। वर्तमान निर्वाचन प्रणाली का सारा आधार वैयक्तिक मतदाताओं की मतगणना है, जिसकी विधि कहीं कम, कहीं अधिक जटिल होती है। इसका अनिवार्य परिणाम यह होता है कि प्रत्याशियों को चुनाव जीतने के लिए सामाजिक प्रतिष्ठा की कीमत पर भी तरह–तरह के हथकंडे अपनाने पड़ते है। इसी कारण सामूहिक जीवन की अति जटिल समस्या को अति सरल करने की ओर संसदीय लोकतंत्र अनिवार्यतः प्रवृत होता है। इसके चलते

लोग पक्षपात, उत्तेजना और उद्वेग की ओर भी प्रवृत होते है, जिससे उनमें कटुता भर जाती है।

संसदीय लोकतंत्र की इस निर्वाचन व्यवस्था में चुनाव जीतने के लिए इतनी बड़ी कीमत चुकाई जाती है। कि इससे देशहित की बलि तो चढ़ ही जाती है, मतदाताओं के भी वास्तविक और दीर्घकालिक हितों को क्षति पहुँचती है, भले उनको तत्कालिक और स्पष्ट लाभ दिखाई पड़ता हो। लोकतंत्रात्मक सरकारों की सामान्य यह प्रवृति होती है कि जिस विधि भी संभव हो, अधिक से अधिक मतदाताओं को अपने अनुकूल बना लिया जाये। यही कारण है कि जब राज्य में निर्वाचित विधानसभाएँ बन जाती है और जनमत स्थिर हो जाता है और जब मतदाताओं के झुकाव पर अंकश लगाने के लिए राजनायक नहीं रह जाते, वरन् उनको क्षुब्ध करने और चूसने के लिए केवल राजनीतिक रह जाते है, तो ये सरकारें वास्तविक स्थिति का सामना करने में अपने को असमर्थ पाती हैं। पिछले अड़सठ सालों में तिकड़मवाद का और उसके फलस्वरूप हुई राष्ट्रीय क्षति का हमें काफी अनुभव अपने देश में हो चूका है।

स्वयं लोकतंत्र की दृष्टि से संसदीय लोकतंत्र का सबसे बड़ा दोष है, केन्द्रवाद की ओर इसका स्वाभाविक झुकाव। इसके राजनीतिक स्पैक्ट्रम के एक छोर पर राष्ट्रीय राज्य और दूसरे छोर पर वैयक्तिक मतदाता है और बीच में है व्यापक रिक्तता। सत्ता और प्रषासन के केन्द्रीकरण का स्वाभाविक परिणाम है नौकरषाही। केन्द्रीय कार्यपाालिका या मंत्रिमण्डल पर काम का इतना बोझ रहता है कि उसे विवश होकर अधिकाधिक काम स्थायी अधिकारियों पर छोड़ना पड़ता है। फलतः ये अधिकारी कालान्तर में अत्यधिक शक्ति और अधिकार प्राप्त कर लेते है। इसका बड़ा भयानक परिणाम यह होता है कि ऐसे नौकरशाहों का निरंकुश शासन स्थापित हो जाता है, जिनसे लोहा लेना इसलिए कठिन है कि वे परदे के पीछे से कार्य करते है। नौकरषाही निरंकुशता का एकमात्र जवाब है– सत्ता का अधिकाधिक विकेन्द्रीकरण। जिसमें जनता प्रषासन में प्रत्यक्ष भाग ले सके और उन अधिकारियों को भी नियंत्रित कर सके, जिनकी रोजी का वही मालिक है और जिसके प्रति ये अधिकारी जिम्मेदार है।

समाधान/सुझाव

जनता की आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए चुनाव प्रणाली में सुधार की बात पिछले कई सालों से हो रही है। चुनाव प्रणाली में उन बदलावों को चुनाव सुधार कहते है। जो चुनाव को पारदर्शी बनाए, चुनाव को धन–बल से प्रभावित होने से रोके और यह सुनिश्चित करे कि विधायिका में आपराधिक पृष्ठभूमि वाले लोगों का प्रवेश नहीं हों। इसमें निष्पक्ष चुनाव से लेकर आधुनिक तकनीक का उपयोग भी शामिल है। चुनावों में धर्म, जाति तथा पंथ के इस्तेमाल को लेकर लगातार सवाल उठ रहे है। इस पर रोक लगाने की मांग हो रही है । सर्वोच्च न्यायालय ने भी टिप्पणी की है कि धर्म और जाति के नाम पर वोट मांगना अवैध है। लेकिन इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि देश के राजनीतिक दल पंथ, धर्म तथा जाति की राजनीति से ऊपर नहीं उठ रहे है। यह लोकतंत्र के लिए खतरनाक संकेत है, क्योंकि धर्म एवं जाति की राजनीति सरकार की नीतियों को प्रभावित करके जरूरी ज्वलंत मुद्दो को गौण बना देती है।

चुनाव सुधार का महत्वपूर्ण हिस्सा है चुनावों में इलेक्ट्रानिक वोटिंग मषीन का इस्तेमाल। ईवीएम इस्तेमाल करने के पीछे कई तर्क है। बिहार जैसे राज्यों में तो मतपेटियां ही लूट ली जाती थी। बंदूक के बल पर जाली वोट डाले जाते थे। वही बैलेट पेपर से मतदान की गति धीमी रहती थी। मतगणना में दो दिन तक का समय लगता था। चुनाव आयोग ने एक महत्वपूर्ण सुधारात्मक कदम उठाते हुये इवीएम से मतदान शुरू करवाया है जिससे मतगणना शुरू होने के कुछ घंटो के अन्दर ही चुनाव परिणाम आ जाते है। लेकिन समय बीतने के साथ चुनावों में इवीएम को लेकर तमाम सवाल उठ रहे है। हाल ही में हुये उत्तरप्रदेश विधानसभा चुनावों के बाद इवीएम से छेडछाड़ का मामला सर्वोच्च न्यायालय तक पहुँच गया है। ऐसे में अब चुनाव आयोग को राजनीतिक दलों समेत उनके समर्थक मतदाताओं के मन में इवीएम को लेकर उठ रही शंकाओं को दूर करना होगा तथा इवीएम के साफ सुथरे इस्तेमाल को लेकर मजबूती से अपना पक्ष रखना होगा।

निष्कर्ष

इसे सभी को स्वीकार करना पड़ेगा कि नीति विषयक बड़े–बड़े प्रश्नों पर शांत चित्त से और अनुत्तेजित स्थिति में विचार होना चाहिए, न कि दलीय हित की भावना से प्रेरित होकर । भारतीय लोकतंत्र की समस्या मूलतः नैतिक समस्या है। संविधान, शासन प्रणाली, राजनीतिक दल, निर्वाचन यह सब लोकतंत्र के अनिवार्य अंग है। पर जब तक लोगों में नैतिकता की भावना नहीं रहेगी, लोगों का आचार–विचार ठीक नही रहेगा, तब तक अच्छे से अच्छे संविधान और राजनीतिक प्रणाली के बावजूद लोकतंत्र ठीक से काम नहीं कर सकता। इस प्रकार स्पष्ट है कि लोकतंत्र की भावना उत्पन्न और संवर्द्धित करने के लिए आधार प्रस्तुत करने का कार्य राजनीतिक नहीं, षिक्षणात्मक है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *पामर, नार्मन डी, द इंडियन पॉलिटिकल सिस्टम, जॉर्ज एलेन एण्ड अनविल, लंदन, 1963, पृष्ठ 182.*
2. *भल्ला, आर.पी, इलेक्शंस इन इण्डिया, एस चांद एण्ड कम्पनी, दिल्ली, 1973, पृष्ठ 135*
3. *वीनर, मायरन, दि 1971 इलेक्शंस एण्ड इण्डियन पार्टी सिस्टम, एशियन सर्वे दिसम्बर, 1971, पृष्ठ 154.*
4. *कष्यप, सुभाष, पालिटिक्स ऑफ डिफेक्शन, नेशनल दिल्ली, 1969, पृष्ठ 4.*
6. *जौहरी, जे.सी., रिफलेक्शन आफ इंडियन पॉलिटिक्स, एस.चांद, एंड कम्पनी, 1974, पृष्ठ 41.*
7. *कोठारी, रजनी, कास्ट इन इंडियन पॉलिटिक्स, ओरियंट लांगमैन, दिल्ली, 1970, पृष्ठ 4.*
8. *जोंस, मोरिस, गवर्नमेंट एंड पॉलिटिक्स ऑफ इण्डिया, एलायड पब्लिशर्स, दिल्ली, 1966, पृष्ठ 52–60.*
9. *श्रीनिवास, एम.एन., सोशल चेंज इन मॉडर्न इण्डिया, एलायड पब्लिशर्स दिल्ली, 1966, पृष्ठ 146.*
10. *सईद, एस.एम., भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, भारत बुक सेंटर, लखनऊ, 2009, पृष्ठ 263.*
11. *नारंग, ए. एस, भारतीय शासन एवं राजनीति, गीतांजली पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 2010, पृष्ठ 299.*
12. *घोष, पीऊ, 'इण्डियन गवर्नमेण्ट एण्ड पॉलिटिक्स', पेपरबैक, 2017, पृष्ठ 101*